

ने लिखा था कि पत्रकारिता में पूंजी का प्रभाव बढ़ रहा है। इस कारण पत्रकारिता में कई बुराइयाँ आ रही हैं। आजादी के बाद नेहरू जी ने अखबारों को लेकर चिंता जताई। सरकार किसी की रही हो हरेक को मीडिया से शिकायत रहती है। मुंबई हमले के दौरान टीवी चैनलों की भूमिका को लेकर भी लंबी बहस चली। चैनलों पर लगाम कसने की बात उठी। टीवी चैनलों के लिए दिशा-निर्देश बनने चाहिए। इसकी भी मांग हो रही है। प्रेस कौंसिल की तर्ज पर मीडिया कौंसिल बनाने की मांग लंबे समय से चल रही है। सरकार जब किसी मसले पर फंसती है तो चैनलों पर शिकंजा कसने की बात होने लगती है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि मीडिया के लिए आचार-संहिता होनी चाहिए। बनाएगा कौन? इस पर भी विवाद है। नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स ने तीस साल पहले पत्रकारों के लिए आचार संहिता की घोषणा की थी। भारतीय प्रेस परिषद ने भी आचार संहिता बनाई है। कुछ अन्य संगठनों ने भी आचार संहिता बनाई। सवाल यह है कि कवरेज के समय आचार संहिता का कितना ध्यान रखा जाता है। खासतौर पर पेड न्यूज के जमाने में तो कुछ अखबारों में आचार संहिता को ताक पर ही रख दिया है।

मीडिया में पुराने लोग नए लोगों को, और नए लोग पुराने लोगों को कोसते रहते हैं। पुराने पत्रकारों का कहना है कि नए लोगों ने बेड़ा गर्क कर दिया है। नए लोग कहते हैं कि पुराने पत्रकार समय के साथ नहीं चलना चाहते हैं। बदलते समय के साथ सोच तो बदलनी चाहिए पर इसका ध्यान भी रखना चाहिए कि पत्रकारिता की मूल सोच को नहीं बदलना चाहिए। किसी जमाने में संपादक की चलती थी और आज मालिकों की चलती है।

ज्यादातर अखबारों या मीडिया घरानों में मैनेजर अखबारों के संपादक्रीय विभाग पर हावी रहते हैं। ब्रांड मैनेजर संपादक से बड़ा होता है। उसे पत्रकारिता की समझ है या नहीं, इससे मतलब नहीं है। मतलब आने वाले बिजनेस से होता है। संपादक की गरिमा ही नहीं पद भी समाप्त होते जा रहे हैं। कितने अखबारों में संपादक हैं। मालिक ही सबकुछ हैं। मालिकों को जो भाता है छपता है। जहां फायदा हो वह छपता है। कंप्यूशन इतना तगड़ा है कि पत्रकार ही एक-दूसरे की ऐसी-तैसी करते रहते हैं। किसी अखबार ने कुछ खुलासा किया तो दूसरे कहे प्लांट कर दिया।

जमाना बदलेगा तो मीडिया की भूमिका भी बदलेगी। आज कोई यह उम्मीद कैसे कर सकता है कि कोई पत्रकार बिना पैसे लिए काम करे। पापी पेट के लिए पैसा तो चाहिए ही। अगर आज भी

प्रेस कौंसिल की तर्ज पर मीडिया कौंसिल बनाने की मांग लंबे समय से चल रही है। सरकार जब किसी मसले पर फंसती है तो चैनलों पर शिकंजा कसने की बात होने लगती है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि मीडिया के लिए आचार-संहिता होनी चाहिए। बनाएगा कौन? इस पर भी विवाद है। नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स ने तीस साल पहले पत्रकारों के लिए आचार संहिता की घोषणा की थी।

किसी क्षेत्र में वेतन और सुविधाएं कम हैं तो वह मीडिया का ही क्षेत्र है। जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि बिना पूंजी कोई भी अखबार या चैनल नहीं चल सकता है। बिजनेस तो है पहले भी था और आज भी है। पहले कम फायदे में चलता था और आज ज्यादा फायदा चाहिए। इसका असर भी अखबारों पर पड़ता है। सरकार, प्रशासन और अन्य सरकारी मशीनरी का दबाव भी तरह-तरह से मीडिया पर रहता है। आज तो मीडिया इतना है कि किसी एक के नाराज होने या खिलाफ होने से कोई असर नहीं पड़ता है। मीडिया के बढ़ते असर का एक फायदा जरूर है कि कोई एमरजेंसी लगाने जैसा कदम नहीं उठा सकता है। अब मीडिया पर पहरा बिठाना आसान नहीं है। मीडिया के ऊपर दबाव हो सकते हैं, पहले भी होते थे। पर कोई



न कोई रास्ता निकाल कर लोगों की उम्मीद पर खरा उतरना होता है। कोशिश रहनी चाहिए कि पत्रकारिता की मूल भावना जिंदा रहे। मीडिया की भूमिका समाज के सामने एक शिक्षक जैसी होती है। उस शिक्षक जैसी नहीं जो स्कूल या कालेज में पढ़ाते हैं। स्कूल या कालेज में पढ़ाते वाले तो जो पढ़े हैं वहीं हर क्लास को पढ़ाते रहते हैं। मीडिया की भूमिका ऐसे शिक्षक की तरह है जो रोज नया पढ़े और नया गढ़े और लोगों को रोज नया पढ़ाए। केवल यह स्थापना करने से काम नहीं चलेगा कि मीडिया अपना काम नहीं कर रहा है। समाज में जो कुछ अच्छा-बुरा हो रहा है, उसका असर भी मीडिया पर पड़ता है। इस सब के बावजूद हमारी कोशिश यह रहनी चाहिए कि तमाम दबावों के बीच हम रास्ता खोजें। आखिर हमारी जवाबदेही अपने पाठकों के प्रति है। बाजार में भी वहीं अखबार टिकेगा जो लोगों की उम्मीदों पर खरा उतरेगा।

मेरा एक बड़ा सवाल यह है कि भारत में मीडिया को लोकतंत्र का चौथा खंभा कहा जाता है। लोकतंत्र के इस चौथे खंभे की आज चौतरफा आलोचना हो रही है। घोटालों की कवरेज को लेकर केन्द्रीय जांच ब्यूरो और केन्द्र सरकार मीडिया की आलोचना कर रहा है। आज हालत यह है कि मीडिया की अन्दरूनी लोकतंत्र ही बिगड़ गया है। मीडिया में बढ़ते दबाव के कारण यह हालत और भी बिगड़ रही है। अन्दरूनी दबावों के साथ-साथ बाहरी हमले भी पत्रकारों को झेलने पड़ते हैं। लोकतंत्र के स्वयंभू चौथे खंभे के कारण समाज की निगाह मीडिया की तरफ रहती है। राजनीति, अफसरशाही, कारपोरेट और पुलिस से जुड़े लोग भी एक-दूसरे की खामियाँ निकालने के लिए मीडिया का ही इस्तेमाल करते हैं। आम आदमी तो हर समस्या के हल के लिए मीडिया के दरवाजे खटखटाते हैं। मीडिया में छपने या दिखने के बाद समस्याओं का हल भी हो जाता है। मीडिया को अन्दरूनी या बाहरी दबाव से बचाने के लिए जरूरी है कि कानूनी तौर पर मीडिया में काम करने वालों को हक मिले। आज तक तो कौन पत्रकार होगा, इसका भी कोई परिभाषा तय नहीं है। श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम में परिभाषा है भी तो वह कहीं लागू नहीं है। इसके लिए जरूरी है कि कानूनी तौर पर सरकार पत्रकारों के लिए एक मशीनरी बनाने की पहल करे। हम तो पत्रकारों की सुरक्षा के लिए कानून बनाने की मांग पहले से ही कर रहे हैं। इस कानून के तहत यह भी तय होगा कि कौन पत्रकार। इससे पत्रकारिता के नाम पर गोरखधंधा करने वालों पर लगाम लगेगी। कम से कम स्वस्थ लोकतंत्र की मांग तो यही है।

इससे मीडिया के कामकाज में पारदर्शिता आएगी और लोगों की उम्मीदों पर मीडिया खरा उतरेगा।